तित्थयर

पंचदश वर्ष : जुलाई १९९१ : तृतीय अंक

जैन भवन

आ. श्री
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
जि. गांधीनगर

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १५ : अंक ३

जुलाई १९९१

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

साहू नेमिचन्द्र ६७

जैन परम्परा में योग ७२

चित्रसेन व पद्मावती के प्रसंग में ८३

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ९१

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ९५

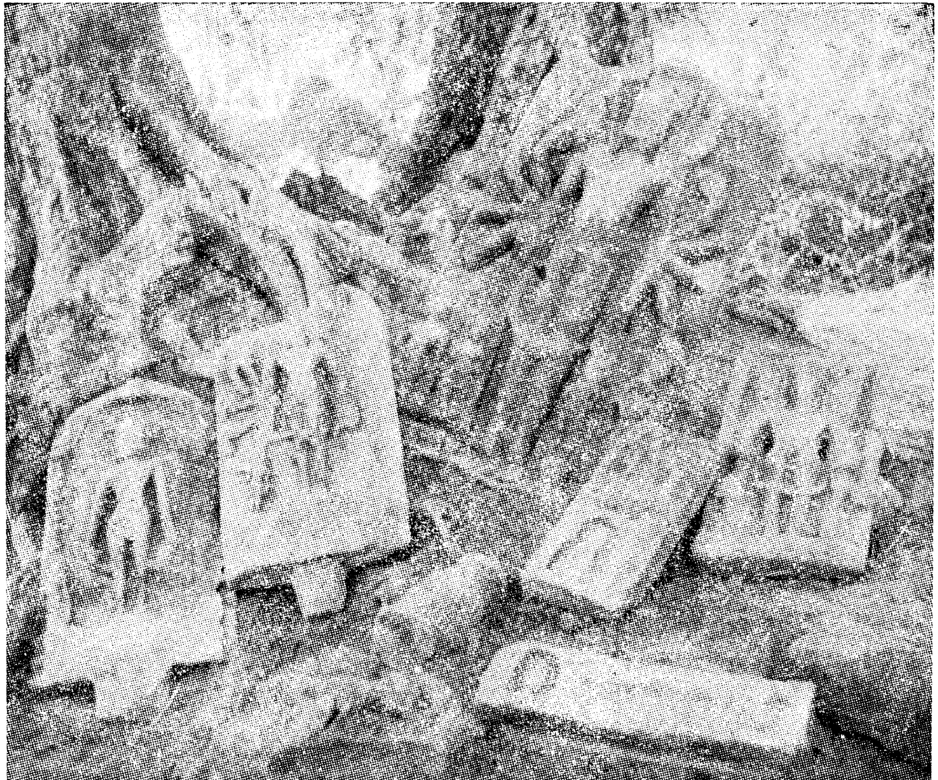

पँचड़ा (आसनसोल) का जैन धरोहर

साहू नेमिचन्द्र

कुन्दनलाल जैन

साहू नेमिचन्द्र अपने समय के बड़े धार्मिक एवं अति धनिक प्रतिष्ठित श्रेष्ठी थे। उन्हें देव, शास्त्र और गुरु पर तीव्र आस्था थी। उनके विषय में विस्तार से लिखने से पूर्व उन महाकवि का परिचय कराना नितान्त आवश्यक है जिनके कारण साहू नेमिचन्द्र की यशोगाथा अमर हो गई है और लोग उन्हें आज श्रद्धा से स्मरण करते हैं।

वे महाकवि थे अपभ्रंश भाषा के श्रेष्ठतम कवि विबुध श्रीधर। यद्यपि अपभ्रंश में रचना करने वाले श्रीधर नाम के कई कवि हुए हैं पर साहू नेमिचन्द्र के आग्रह एवं अनुनय विनय और प्रार्थना पर अपभ्रंश में "वड्ढमाण चरिउ" की रचना करने वाले कविश्रेष्ठ विबुध श्रीधर का समय वि० सं० ११६० है।

कवि विबुध श्रीधर ने छह काव्य रचनाएँ की थी: (१) पासणाह चरिउ जो नहल साहू की प्रार्थना पर की थी, (२) वड्ढमाण चरिउ जो साहू नेमिचन्द्र की प्रार्थना पर की थी, (३) सुकुमाल चरिउ जो पीथे साहू के पुत्र कुमर की प्रार्थना पर की थी, (४) भविसयत्त कहा जो सुपट्ट साहू की प्रार्थना पर की थी, (५) संति जिणेसर चरिउ और (६) चंदप्पह चरिउ। इनमें से अंतिम दोनों रचनाएँ अब तक सर्वथा अप्राप्य हैं अतः उनके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। शोधार्थियों का कर्त्तव्य है कि विभिन्न भण्डारों में ढूढ़ने से ये दोनों ग्रन्थ मिल सकते हैं।

कवि ने उपर्युक्त रचनाएँ वि० सं० ११८९ से वि० सं० १२३० तक की थी। इन्होंने 'पासणाह चरिउ' में दिल्ली का जो ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत किया है वह तत्कालीन इतिहास का बहुमूल्य साक्ष्य एवं तथ्य है। और सभी इतिहासकार इसे प्रामाणिक रूप में स्वीकार करते हैं जो सर्वथा निर्विवाद और सत्य है। कवि हरियाणा निवासी अग्रवाल जैनी थे। जब वे यमुना पार कर दिल्ली आये तब यहाँ अनंगपाल तोमरद्विका राज्य था। यहाँ दिल्ली को उस समय ढिल्ली क्यों कहा जाता था इसकी थोड़ी सी चर्चा कर देना कुछ अप्रासंगिक न होगा।

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार अनंगपाल के पूर्वज कलहण राजा हस्तिनापुर में राज्य करते थे। एक बार जब वे शिकार खेलने गये तो दिल्ली के आसपास आकर उन्होंने देखा कि एक खरगोश उनके शिकारी कुत्ते से

जूझ रहा है और उसे दुखी कर रहा है। इसे देख राजा कल्हण बड़े विस्मित हुए और उन्होंने इसे वीर भूमि समझ वहाँ एक लोहे की कीली गाड़ दी और उस स्थान का नाम कील्ली अर्थात् कल्हणपुर रख दिया। कई पीढ़ियों बाद जब यहाँ किला बनवाने की बात आई तो राज पुरोहित से भूमि पूजन तथा स्थान शुद्धि को कहा। राजपुरोहित ने पुनः उसी स्थान पर कीली गाड़ी और कहा कि पांच मुहूर्त तक इसे कोई न छेड़े। यह शेषनाग के मस्तिष्क से सट गई है, जब तक यह कील्ली गड़ी रहेगी तोमर बंश अखण्ड और चिर स्थायी बना रहेगा, इसे कोई भी परास्त न कर सकेगा। इतनी भविष्यवाणी कर राज पुरोहित चले गये।

राजपुरोहित के जाते ही राजा अनंगपालादि ने जिज्ञासावश वह कील्ली तुरन्त ही उखाड़ दी जिससे वहाँ रक्त की धारा वह निकली और कील्ली अग्रभाग पर रक्त रंजित था। जब राजपुरोहित को पता चला तो वह बड़ा दुःखी हुआ और उसने कहा, हे राजन्, इस कील्ली के ढिली होने से तुम्हारा राज्य भी ढीला हो जायगा। तब से यह स्थान ढिल्ली के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाद में यह दिल्ली नाम में परिवर्तित हुआ। विभिन्न कालों में दिल्ली को विभिन्न नामों से ख्याति मिली। यथा इन्द्रप्रस्थ, योगिनीपुर शाहजहानाबाद आदि आदि लगभग १५-१६ नाम दिल्ली के इतिहास में विख्यात हैं।

कवि विबुध श्रीधर जब हरियाणा से चलकर दिल्ली में अपने परम भक्त साहू अल्हण के घर ठहरे तो साहू अल्हण ने बड़े आदर एवं भक्तिभाव से उनका अतिथि सत्कार किया। एक दिन साहू अल्हण ने तत्कालीन राज श्रेष्ठी प्रसिद्ध सार्थवाह साहू नहल की चर्चा की और उनसे भेंट करने को प्रेरित किया पर कवि विबुध श्रीधर ने निम्न पद्य द्वारा सेठों के दुर्जन भाव का वर्णन कर जाने से इन्कार कर दिया :

असहिय पर णर गुण गरुअरिद्धि, दुव्वयण हणिय पर कज्ज सिद्धि।
कयणासा मोडण मत्थरिल्ल, भूमिउडिमंणिणिंदिय गुणिल्ल।
को सक्कइ रंजण ताहं चित्तु, सज्जण पयडिय सुअणत्तरित्तु।
तहिं लईं महु किं गमणेण भव्व, भव्वयण बंधु परिहरिय गव्व।

तब अल्हण साहु ने कविवर को विश्वास दिलाया कि नहल साहू ऐसे सेठ नहीं हैं, वे तो बड़े धार्मिक और विद्वानों का आदर करने वाले हैं। अतः आप एक बार तो अवश्य ही उनसे मिलिए। मैं आपके साथ रहूँगा। अल्हण साहु से इस तरह आश्वस्त हो कविवर नहल साहु से मिलने गये।

नहल साहु को जब कविवर के शुभागमन का पता चला तो वे स्वयं उनकी अगवानी के लिए दलबल सहित नंगे पाँव पैदल यात्रा की और उन्हें बड़े भक्ति भाव से आदर सहित घर ले आये, श्रद्धा सहित उनका अतिथि सत्कार किया, प्रतिदिन उनसे शास्त्र प्रवचन सुना। उनके व्यक्तित्व और विद्वत्ता एवं प्रतिभा से प्रभावित हो नहल साहु ने कविवर से पार्श्वप्रभु का चरित सुनने का हार्दिक अभिलाषा प्रकट की तो फिर कविवर ने उनके अनुरोध पर 'पासणाहचरिउ' की रचना की। कविवर के कहने पर नहल साहु ने महरौली के पास भगवान् आदिनाथ का जिनालय निर्माण कराया जिसके ध्वंसावशेष अभी भी कुतुबमीनार के आसपास के खण्डहरों में यत्रतत्र देखने को मिल जाते हैं।

कवि विबुध श्रीधर का जन्म वि० सं० ११५४ के आसपास माना जाता है। वे लगभग ७६ वर्ष की आयु तक साहित्य रचना करते रहे। इनके पिता का नाम गोल्हत था, माता का नाम वील्हा। इसके अतिरिक्त कवि के विषय में कोई और अधिक जानकारी नहीं मिलती है। कवि ने वोदाउव (बदायूँ) निवासी जैसवाल कुलोत्पन्न श्री नरवर और उनकी पत्नी सोमइ (सुमति) के पुत्र साहु नेमिचन्द्र के अनुरोध और प्रार्थना पर 'वड्ढमाण चरिउ' की रचना की थी।

कवि ने साहु नेमिचन्द्र की प्रशंसा में अपने ग्रन्थ 'वड्ढमाण चरिउ' की प्रत्येक संधि के अंत में एक-एक संस्कृत श्लोक लिखा है अतः नौ श्लोकों की एक अच्छी खासी नेमिचन्द्र प्रशस्ति बन जाती है जो साथ में संलग्न है। साहु नेमिचन्द्र की पत्नी का नाम बीणा था। जिनसे रामचन्द्र, श्रीचन्द्र और विमलचन्द्र नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। कवि के प्रशंसात्मक श्लोकों से साहु नेमिचन्द्र के गुणों एवं प्रतिष्ठा का पता लगता है।

साहु नेमिचन्द्र धार्मिक, दयालु, परोपकारी और जिनभक्ति आदि गुणों से मंडित थे। प्रशस्ति में प्रयुक्त 'न्यायान्वेषण तत्परः' तथा 'बन्दिदत्तोरुचन्द्रः' जैसे विशेषणों से ज्ञात होता है कि साहु नेमिचन्द्र राज्य सम्मानित पदाधिकारी थे और न्याय विभाग में सम्बन्धित दण्डाधिकारी के पद पर आसीन थे। साहु नेमिचन्द्र अपने समय के प्रतिष्ठित व्यापारी थे तथा उनका व्यापारिक सम्बन्ध राज्य से बाहर विदेशों से भी था। लगता है वे अपने समय के बड़े भारी सार्थवाह भी रहे हों जिनके जहाज विदेशों को यहाँ का माल ले जाते थे और विदेशों से वहाँ का माल यहाँ लाते थे।

प्रशस्ति में प्रयुक्त "ज्ञात तारादि चन्द्रः" विशेषण उस बात का द्योतक है कि साहु नेमिचन्द्र ज्योतिषशास्त्र एवं खगोल विद्या में भी निष्णात एवं पारंगत थे। साहु नेमिचन्द्र प्रतिष्ठित राज्य सम्मानित अधिकारी थे, वे सज्जनों की प्रशंसा करते थे तथा दुष्टों को दण्ड भी देते थे। वे साधु स्वाभावी थे। वे इतनी अधिक भोग सम्पदा को भोगते हुए भी संसार से सदा विरक्त रहते थे, गुणी जनों का सम्मान करते थे, जिन मंदिर में मुनिजनों से समता भाव पूर्वक धर्म चर्चा सुना करते थे, समता भाव धारण करते हुए बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन किया करते थे, स्वयं स्वाध्याय प्रेमी और विद्वज्जनानुरागी थे। शंकादिक दोषों से रहित दश धर्मों का पालन करते थे और मिथ्यात्व का नाश करते थे। वे अपने कुल कमल के लिए सूर्य के समान थे तथा कुलकीर्ति को बढ़ाने वाले थे, प्रभु के चरणों का प्रक्षालन कर उस गन्धोदक से स्व शरीर को पवित्र करते थे, आगम सम्मत पर मतों की बातों को भी मानते थे। वे संवेगादिक गुणों से अलंकृत थे तथा प्रतिदिन जिनार्चन किया करते थे। इस तरह साहु नेमिचन्द्र अनेक मानवीय एवं धार्मिक गुणों से संपन्न थे इसीलिए कवि विबुध श्रीधर ने उनकी प्रशंसा में निम्न नौ श्लोकों की प्रशस्ति लिखी और इसीलिए साहु नेमिचन्द्र के अनुरोध पर कवि ने 'वड्ढमाण चरिउ' रचा। ऐसे ऐसे गुणानुरागी श्रेष्ठी को शतशत नमन है।

साहु नेमिचन्द्र प्रशस्ति

शार्दूलविक्रीड़ित
नन्दत्वत्र पवित्र निर्मल लसच्चारित्रभूषाधरो
धर्मध्यानविधौ सदाकृतरतिर्विद्वज्जनानां प्रियः।
प्राप्तान्तः करणेप्सिताखिलजगद्वस्तुव्रजो दुर्जय
स्तत्वार्थ प्रविचारणोद्यतमनाः श्री नेमिचन्द्रश्चिरम् ॥१॥

शार्दूलविक्रीड़ित
श्रृण्वन्तो जिनवेश्मनि प्रतिदिनं व्याख्यां मुनिनां पुरः
प्रस्तावान्नतमस्तकः कृतमुदः संतोख्य धुर्यः कथा।
धत्तेभावयतिच्छमुत्तमधिया यो भावयं भावना
कस्यासाबुपमीयते तव भुवि श्री नेमिचन्द्रः पुमान् ॥२॥

मालिनी
प्रजनितजनतोषस्त्यक्तशङ्कादि दोषो
दशविधवृषदक्षो ध्वस्तमिथ्यात्वपक्षः।
कुलकमलदिनेशः कीर्तिकान्तानिवेशः
शुभमतिरिह केनं श्लाघ्यते नेमिचन्द्रः ॥३॥

वसन्ततिलका श्रीमज्जिनाधिप पदद्वयगन्धवारि
धाराभिवन्दन पवित्रित सर्वगात्रः ।
गीर्वाणकीर्तितगुणो गुण संगकारी
जीयाच्चिरं चतुरधीरिह नेमिचन्द्रः ।।४।।

मालिनी जगदुपकृति रुन्द्रो जैनपादार्च्चनेन्द्रः
सुकृत कृत वितन्द्रो वन्दिदत्तोरु चन्द्रः ।
गुरुतर गुण सान्द्रो ज्ञाततारादिचन्द्रः
स्वकुलकुमुद चन्द्रो नन्दतान्नेमिचन्द्रः ।।५।।

वसंततिलका यः सर्वदा तनुभृतां जनित प्रमोदः
सद्वंधमानस समुद्भवतापनोदः ।
सर्वज्ञ सद्वृष महारथ चक्रणेमि
नन्दत्वसौ शुभमतिर्भुविन्नेमिचन्द्रः ।।६।।

शार्दूलविक्रीड़ित यः सदृष्टि रुदार धीरधिषणो लक्ष्मीमता सम्मतो
न्यायान्वेषणतत्परः परमत प्रोक्तागमा संगतः ।
जैनेन्द्रा भवभोगभंगुरवपुः वैराग्यभावान्वितो
नन्दत्वात्स नित्यमेव भुवने श्री नेमिचन्द्रश्चिरम् ।।७।।

उपेन्द्रवज्रा न यस्यचित्तं कलितंतमोभिः, शुभ्रीकृतं यस्य जगद्यशोभिः ।
निजान्वय व्योम्नि पूर्णचन्द्रः, प्रशस्यते किं न सः नेमिचन्द्रः ।।८।।

शार्दूल विक्रीड़ित जीवाद्यो जगदेक नायक जिनाधीश क्रमाम्भोजयो
स्त्रैलोक्याधिपतित्रयेण नुतयोर्नित्यं सपर्यारतः ।
संवेगादिगुणैरलंकृतमनाः शङ्कादिदोषोज्झितः
स धीमानिह साधुसुश्रुतमतिः श्री नेमिचन्द्रश्चिरम् ।।९।।

इय वोदाउव णयर मणोहर विप्फुरंत णाणाविह सुरवर ।
जायसवंस सरोयदिणेसहो अणुदिनचित्र णिहित्र जिणेसहो ।।
णरवर सोमई तणु संभूवहो साहु णेमिचंदहो गुणभूव हो ।
वयणे विरइउ सिरिहर णामे तियरण रक्खिय असुहर गामे ।।
वील्हा गब्भ समुब्भव देहे सव्वयणहिं सहुं पयहिय णेहे ।
एउ चिरजिय पाव खयंकरु वड्ढमाणजिणचरिउ सुहंकरु ।।
णिवइ विक्कमाइच्चहो कालए णिच्चुच्छव वर तूरखालइं ।
एयारह सयेहिं परिविगयहिं संवच्छर सए णवहिं समेयहिं ।।
जेट्ठ पढम पक्खहिं पंचमि दिण, सूरुवार गयणं गणिठिइ इण ।

जैन परम्परा में योग

मुनि सुशीलकुमार

[पूर्वानुवृत्ति]

मूलाधारचक्र

नाम	:	मूलाधार	बीजवाहन	:	ऐरावतहाथी
स्थान	:	योनिकेन्द्र	गुण	:	गन्ध
दल	:	चतुः	देव	:	आदिनाथ
वर्ण	:	रक्त	देवशक्ति	:	डाकिनी
लोक	:	भू	यन्त्र	:	चतुष्कोण
दलों के अक्षर	:	वं, शं, षं, सं	ज्ञानेन्द्रिय	:	नासिका
नामतत्व	:	पृथ्वी	कर्मेन्द्रिय	:	गुदा
तत्वबीज	:	लं			
फल	:	वक्ता, श्रेष्ठमानव, सर्वविद्या सिद्धि, प्रसन्नता			

स्वाधिष्ठानचक्र

नाम	:	स्वाधिष्ठान	बीजवाहन	:	मकर
स्थान	:	पेडू	गुण	:	रस
दल	:	षट	देव	:	चन्द्रप्रभ
वर्ण	:	सिन्दूर	देवशक्ति	:	शाकिनी
लोक	:	भुवः	यन्त्र	:	चन्द्राकार
दलों के अक्षर	:	वं, भं, मं, बं, रं, लं	ज्ञानेन्द्रिय	:	रसना
नामतत्व	:	जल	कर्मेन्द्रिय	:	लिंग
तत्वबीज	:	वं			
फल	:	अहंकार विकारों का नाश, मोहनाश, आकर्षण			

मणिपुरचक्र

नाम	:	मणिपूर	तत्वबीज	:	रं
स्थान	:	नाभि	बीजवाहन	:	मेष
दल	:	दश	गुण	:	रूप
वर्ण	:	नील	देव	:	पार्श्वनाथ
लोक	:	स्वः	देवशक्ति	:	लाकिनी
दलों के अक्षर	:	डं, ढं, णं, तं, थं,	यंत्र	:	त्रिकोण
		दं, धं, नं, पं, फं	ज्ञानेन्द्रिय	:	चक्षु

नामतत्व	:	अग्नि	कर्मेन्द्रिय	:	चरण
फल	:	कवि एवं सरस्वती का साक्षात् दर्शन होता है			

अनाहत चक्र

नाम	:	अनाहत	तत्वबीज	:	यं
स्थान	:	हृदय	बीजवाहन	:	मृग
दल	:	द्वादश	गुण	:	स्पर्श
वर्ण	:	अरुण	देव	:	शान्तिनाथ
लोक	:	महः	देवशक्ति	:	काकिनी
दलों के अक्षर	:	कं, खं, गं, घं, ङं, चं,	यंत्र	:	षट्कोण
		छं, जं, झं, ञं, टं, ठं	ज्ञानेन्द्रिय	:	त्वचा
नामतत्व	:	वायु	कर्मेन्द्रिय	:	हाथ
फल	:	ईशत्वसिद्धि एवं परकाया प्रवेश सामर्थ्य प्राप्त होती है			

विशुद्धचक्र

नाम	:	विशुद्ध	बीजवाहन	:	हस्ती
स्थान	:	कण्ठ	गुण	:	शब्द
दल	:	षोडश	देव	:	अरिष्टनेमि
वर्ण	:	धूम्र	देवशक्ति	:	शाकिनी
लोक	:	जन	यंत्र	:	शून्याकार
दलों के अक्षर	:	१६ स्वर अं से अः तक	ज्ञानेन्द्रिय	:	कर्ण
नामतत्व	:	आकाश	कर्मेन्द्रिय	:	वाक्
तत्वबीज	:	हं			
फल	:	वशित्व, शांति, तेजस्विता, ज्ञानी, वक्ता			

आज्ञाचक्र

नाम	:	आज्ञा	तत्वबीज	:	ॐ
स्थान	:	भ्रूमध्य	बीजवाहन	:	नाद
दल	:	द्विदल	देव	:	लिंग
वर्ण	:	श्वेत	देवशक्ति	:	हाकिनी
लोक	:	तप			
दलों के अक्षर	:	हं, क्षं	यंत्र	:	लिंगाकार
नामतत्व	:	मह			
फल	:	वाक् सिद्धि प्राप्त होती है			

शून्यचक्र (सहस्रार)

नाम	:	शून्य	तत्वबीज	:	विसर्ग
स्थान	:	मस्तक	बीजवाहन	:	बिन्दु
दल	:	सहस्र	देव	:	सिद्ध
लोक	:	सत्य	यंत्र	:	पूर्णचन्द्रनिराकार
दलों के अक्षर	:	अ से क्ष तक	देवशक्ति	:	महाशक्ति
नामतत्व	:	तत्वातीत			
फल	:	विदेह, आकाशगामी और समाधियुक्त योगी			

अज्ञाचक्र के समीप कारण-शरीर रूप सप्तकोषों का वर्णन आया है। वे सप्तकोष हैं : इन्दु, बोधिनी, नाद, अर्धचन्द्रिका, महानाद कला (सोम, सूर्याग्नि), रूपिणी एवं उन्मनी। उन्मनी कोष में पहुँच जाने से जीव की पुनरावृत्ति नहीं होती।

इसी प्रकार योगदृष्टि-समुच्चय में आचार्य हरिभद्रसूरि ने आठ दृष्टियों का वर्णन किया है : मित्रा, तारा, बला, दीप्रा, स्थिरा, कान्ता, प्रभा, परा। परा दृष्टि में पहुँचने पर योगी निर्विकल्प समाधि को प्राप्त हो जाता है।

तन्दुलवेयालिय नामक जैनशास्त्र में करोड़ों नाड़ियों का वर्णन आता है, जिनमें २६ नाड़ियाँ मुख्य हैं।

नाभि के पास जो केन्द्र है उसमें १६ नाड़ियाँ ऊपर को गई हैं। वे जड़ में से दो-दो मिली हुई निकली हैं। चार नाड़ियाँ जुड़ी हुई और एक नाड़ी बिल्कुल अलग है। ५ नाड़ियाँ वाम से दक्षिण की ओर तथा ५ नाड़ियाँ दक्षिण से वाम की ओर गई हैं। दो-दो नाड़ियाँ दोनों ओर गई हैं और १० नाड़ियाँ नीचे की ओर गई हैं। इस प्रकार ये २६ महत्वपूर्ण नाड़ियाँ हैं। प्राण अपानादि दश प्राण पृथक है और दश नाड़ियाँ दशों द्वारों में रहती हैं। ये दश द्वार पाँचों ज्ञानेद्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ब्रह्मरन्ध्र स्पर्शेन्द्रिय का दश द्वार माना जाता है। दश प्रमुख नाड़ियाँ हैं : इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, गांधारी, हस्ति-जिह्वा, पूसा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा जो आज्ञाचक्र से उत्पन्न होती है, सहस्रदल कमल के पास में होकर मेरूदण्ड के बराबर होती हुई पश्चिम मुख से निकलकर गुह्यस्थान में होती हुई योनिकन्द को भेदन करती हुई नाभिमण्डल से होती हुई अन्य चक्रों को भेदन करती हुई नासा से निकलती है।

गुह्यद्वार से ऊपर जो मूलाधार चक्र है, उसमें प्राप्त सुषुम्णा नाड़ी के बीच

में, लिंग देश से निकलकर सिर तक पहुँची हुई वज्र नाम की एक नाड़ी है। वह बड़ी देदीप्यमान है। योगीजन ही अनुभव कर पाते हैं। यह नाड़ी मकड़ी के जाल तंतु से भी सुक्ष्म है और सुषुम्णा नाड़ी तथा छहों चक्रों की नाल को भेदन कर गई है। वैसे ही चित्रनाड़ी भी उसकी छिद्र से ऊपर को चली गई है और उसी के बीच में ब्रह्मनाड़ी भी देदीप्यमान हो रही है तथा वह सुषुम्णा से भी अधिक मोहक है। इस ब्रह्मनाड़ी में ऊपर मणिकर्णिका में आवृत होकर कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र तक सभी द्वारों को रोके हुए हैं और सुषुम्णा में जाने नहीं देती। कुण्डलिनी को सोते सर्प की तरह वलयाकार बताया गया है। उसे विश्व विद्युत के समान प्रचण्ड शक्ति माना गया है। इसे जागृत करने के लिए प्राणवायु और अपान वायु को निरूद्ध कर योगी नाभि मध्य में स्थित अग्नि को तीव्र प्रज्वलित करे, तभी यह कुण्डलिनी मेरुदण्ड में से होकर विभिन्न चक्रों को उद्बुद्ध करती हुई ऊपर को जाती है। इससे पराभौतिक जगत् में जाने के सभी द्वार उन्मुक्त हो जाते हैं। आज्ञाचक्र को उद्भासित करके कुण्डलिनी जब सहस्रार को पूर्ण रूप से जगा देती है तब साधक का देह और चित्त पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। सूक्ष्मजगत् एवं सूक्ष्मलोकों में विचरण करने का योगी अधिकारी हो जाता है।

जैनाचार्यों ने शक्ति संचालन के अनेक उपाय सुझाये हैं। वज्रासन लगाकर हाथों से पैरों की एड़ी पकड़कर योनिकंद स्थान को दृढ़ता से पीड़न करे और वज्रासन से ही धोंकनी कुंभक करके वायु को प्रज्वलित करे जिससे नाभिमध्य में स्थित अग्नि प्रज्वलित हो। अग्नि के प्रज्वलित होते ही कुण्डलिनी, जिसे बालरंड़ा भी कहते हैं अपना मुख खोल देती है अथवा नाभिस्थान में सूर्य नाड़ी का आकुंचन करे, कुण्डलिनी को चलावे या चार घड़ी तक शक्ति चालना करे तो कुण्डलिनी सुषुम्णा में प्रवेश पा जाती है। इस शक्ति को चलाने में नौली, अस्तिका, कुंभक और महामुद्रा बहुत ही उपयोगी है। परन्तु यह सब वायु साधन से होता है। वायु १० प्रकार की है। प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कुर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। ये दशों वायु सभी शरीरों में विद्यमान रहती है।

जिसमें प्राणवायु हृदय में, अपानवायु मूलाधार में, समानवायु नाभि में, उदानवायु कण्ठ में, व्यानवायु सारे शरीर में व्याप्त रहती है। नागवायु से डकार, कुर्मवायु से नेत्रों को पलकों की गति होती है। कृकल वायु छींक कराती है। देवदत्त वायु जंभाई लाती है और धनंजय सारे शरीर में रहती है।

छः चक्र और १६ आधार, दो लक्ष्य और ५ आकाश इन तत्वों को जो योगी स्वदेह में नहीं जानता, उसकी सिद्धि किस वस्तु की होगी !

प्रत्याहार : प्रत्याहार का अर्थ जैनागमों में प्रतिसंलीनता किया गया है। मन और इन्द्रियों को शब्दादि विषयों से हटाकर और अपनी इच्छानुकूल विषय में स्थापित करना प्रत्याहार है। इन्द्रियाँ जब बहिर्मुखी न रहकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं, उसी अवस्था का नाम प्रत्याहार है।

इन्द्रियप्रतिसंलीनता : शब्दादि और माया व लोभ से पूरी तरह मुक्त हो जाना।

योगप्रतिसंलीनता : अकुशल मन, वचन एवं अकुशल काया से निवृत होकर, प्रशस्त कुशल की ओर प्रवृत होना।

विविक्तशयनासन सेवनता : एकान्त व निर्दोष स्थान में निवास करना।

धारणा : चित्त की एकाग्रता के लिए चित्त को किसी एक देश या स्थान अथवा लक्ष्यबिन्दु पर स्थापन कर देने का नाम धारणा है। किसी एक सूक्ष्मतम बिन्दु पर दृष्टि एकाग्र कर देना भी धारणा है। मानसी पूजा व धारणा के १६ स्थान बताए हैं।

योगशास्त्र के ५ वें प्रकाश (श्लोक २६-३१) में १६ आधारों का विस्तार से वर्णन किया है जिनपर धारणा की जा सकती है। जैसे : अंगुष्ठ, गुल्फ, जानु, उरु, सीवनी, लिंग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठदेश, लम्बिका, नासिका, भ्रूमध्य, ललाट, मूर्धा और ब्रह्मरंध्र।

१० प्रकार के अन्य सैद्धान्तिक आधार भी गिनाये गये हैं। जैसे कि : उपादान, निमित्त, मुख्य, गौण, द्रव्य, भाव, स्व, पर, बाह्य, आभ्यन्तर और उपचरित।

ये जो १६ आधार बताए गये हैं, इनका समूचे शरीर में ध्यान रखने से अलग-अलग फलों की प्राप्ति होती है। जैसे पैर के अंगूठे, पारिण, गुल्फ, ऊरुस्थल, घुटना, जाँघ, गुदा, मेहन आदि स्थानों से वायु और मन को ब्रह्मद्वार तक क्रमशः पूरक और रेचक करने से शीघ्रगति एवं बल प्राप्त होता है।

नाभि में धारणा व प्राणायाम करने से ज्वर नाश, जठर में करने से काय शुद्धि, हृदय में करने से ज्ञानप्राप्ति, कूर्मनाड़ी में करने से रोग नाश, कण्ठ में करने से क्षुधातृषानाश, जिह्वा के अग्रभाग में करने से रसनाज्ञान, नाशिकाग्र भाग में करने से गंध ज्ञान, चक्षु में करने से रूपज्ञान, कपाल में करने से

शिरोरोगनाश व क्रोधनाश तथा ब्रह्मरंध्र में धारणा व प्राणायाम करने से सिद्धों का दर्शन होते हैं।

जो १० आधार सैद्धान्तिक बताये हैं संक्षेप में निर्वचन इस प्रकार है :

उपादान आधार आत्मा है, निमित्ताधार मानवदेह है। मानवदेह के अन्तर्गत ही १६ आधार समाविष्ट हो जाते हैं। तीसरा मुख्याधार शरीर है और चौथे गौणाधार में पाद गुल्फ आदि अवयव गिने जा सकते हैं। द्रव्याधार में बंध, आसन, मुद्रा, कुंभक आदि का समावेश होता है। जिस द्रव्य पर धारणा करे, उसके भाव को प्रकट कर उसी में लय हो जाने का नाम भावाधार है। स्वाधार स्वयं के आत्मा का आधार है, एवं आठवां पर आधार गुरु और देव का आश्रय है। बाह्याधार का अर्थ है गुरु द्वारा आधारों को—साधक को प्रत्यक्ष समझाना। अभ्यांतराधार का तात्पर्य है अन्तरंग रुचि के अनुसार क्रिया बताना। देव, गुरु, प्रतीक, शास्त्र आदि के सहारे धारणा का ज्ञान प्राप्त होना उपचरिताधार है। जैनाचार्यों ने धारणा का बहुत विस्तार किया है। प्राणायाम की दश भूमिकाओं में प्रथम भूमिका स्वरोदय की है। साधक को भोममण्डल, वायुमण्डल, आग्नेयमण्डल और वरुणमण्डल में स्वयं ही विचरण किये बिना इनका ज्ञान नहीं हो सकता। इन मण्डलों के ज्ञान का आधार केवल स्वर-साधना ही है। जैसे श्वास की गति पर ध्यान देकर जानना कि पार्थिव मण्डल में सम्पूर्ण बीजों से युक्त पृथ्वी, वज्रलांछन, चतुष्कोण, अथवा तप्तसुवर्णाभ जैसा भोममण्डल है। अष्टमी के चन्द्रमा के समान आकार, वकार से लांछित, व अमृत से व्याप्त एवं श्वेत वर्ण ऐसा वरुण मण्डल है। तेलमर्दित गाढ़कृष्ण कान्तिमय वर्ण, गोलाकार, बिन्दुचिन्हों से व्याप्त, दुर्लक्ष्य पवन बीज यकार से आच्छादित चंचल वायुमण्डल है। उठती ज्वालाओं से व्याप्त, भयंकर त्रिकोण, स्वस्तिक लांछन से युक्त अग्निवत् पीतवर्ण तथा अग्निबीज रकार से युक्त ऐसा आग्नेय मण्डल है।

ये धारणा के स्वर हैं। साधक को चाहिए कि वह स्वर, स्वर में बहता हुआ तत्व, आकार, बिन्दु, वर्ण तथा चिन्हों से विभिन्न मण्डलों का ध्यान करे। श्वास एवं प्रश्वास पर सूक्ष्म धारणा करने से त्रिकाल ज्ञान हो जाता है। स्वरविद्या पूर्णसत्य एवं अचूक है। उसे कोई मिथ्या नहीं कर सकता। साधना की कमी हो तो दोष साधक का है, विद्या का नहीं।

धारणा के अभ्यासी को धीरे-धीरे धारणा का समय बढ़ाते जाना चाहिए। स्थूल से सूक्ष्म बिन्दु पर धारणा करने से मन भी सूक्ष्म होता चला जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि धारणा सिद्धि के लिए साधक बाह्य उपाधियों का

त्याग करता जावे, निर्जनस्थान में रहने का अभ्यास बढ़ावे, चलते-फिरते धारणा पर ही अपना लक्ष्य बनाये रखे। नवपद में से किसी की धारणा करे, ओंकार, सोऽहं आदि किसी भी मंत्र या इष्ट पर अपने मन को लय कर दे किन्तु लक्ष्य में चित्त का लय अवस्था बढ़ाते जाना ही धारणा का विकास है।

धारणासिद्धि के अनंतर ध्यान का वर्णन करते हैं।

ध्यान : एक आलम्बन मे अन्तर्मुहूर्त तक मन को स्थिर रखना यह छद्मस्थ योगियों का ध्यान कहलाता है। वह धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान दो प्रकार का है। सर्व योग निरोध रूप अन्तिमशुक्ल ध्यान १४वें गुणस्थान पर पहुँचे हुए परम योगी महाविदेह सिद्धों को ही होता है। देश विशेष में ध्येयवस्तु के ज्ञान की एकतानता का नाम भी ध्यान है जिस समय चित्त अन्य किसी भी पदार्थ के बोध से अनभिभूत होकर किसी एक ही ध्येय में एकाकार रूप से प्रवाहित होता है।

धारणा में ध्येय के किसी एक अंश, पक्ष या गुण में चित्तवृति का स्थापना करना होता है और ध्यान में उसकी एकाग्रता निष्पन्न होती है। सामान्यतया योगियों को एक मुहूर्त तक ध्यान में रहने के बाद ध्यान सम्बन्धी चिन्ता पैदा होती है, जो ध्याता को एक केन्द्र से विचलित अथवा ध्यानान्तर कर देती हैं। ध्यान भंग होने पर उसे पुनः उसी ध्येय के साथ जोड़ने के लिए आत्मा को मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थादि भावनाओं से ओत-प्रोत किया जाना चाहिये।

ध्यान भूमि पवित्र व कोई प्रसिद्ध सिद्धपीठ होनी चाहिये, जिसमें किसी प्रकार से व्यवधान व विक्षेप का डर न हो। एकासन से बैठकर, दोनों ओष्ठ बन्द कर, नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि लगाकर, वीतरागमुद्रा में लय होकर, अर्धनिमीलित नेत्रों से ध्यानस्थ हो जायें, धीरे-धीरे तनाव मुक्त हो जायें। शरीर शिथिल कर दें। श्वासप्रश्वास ढीला छोड़ दें। नासिकाग्र के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण शरीर को सर्वथा विस्मृत कर दें तथा विचार रहित, चिंता रहित एवं सर्वप्रकार से इच्छारहित होकर निश्चल हो जावें। पिण्डस्थ ध्येय में पार्थिवी, वारुणी, आग्नेय, वायव्य धारणाओं (मण्डलों) एवं तजभू में मन को स्थिर करे। विभिन्न धारणाओं का ध्यान, तत्वों का ध्यान तथा सूक्ष्म आलम्बन का ध्यान रखने से मनोलय अवश्य होता है। पिण्डस्थध्यान, नाभिमण्डल में ध्यान, कंठकूप में ध्यान, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शेन्द्रिय में ध्यान, मनोबल, वचनबल एवं कायबल में ध्यान करने से अभीष्ट सिद्धि अवश्य मिलती है और ध्यानावस्था परिपक्व होती है।

मस्तक में संयम, णमोंकार मन्त्र, वर्धमानविद्या, ऋषिमण्डल, मूलमंत्र और चिंतामणि मन्त्रों में भी पदस्थ ध्यान के अनेक चमत्कारी प्रकार बताये गये हैं।

अर्हं मंत्र का ध्यान : नाभिकंद में केवल अर्हं की स्थापना कर ध्यान करना अथवा १६ पंखुड़ियों बनाकर उनमें क्रमशः १६ स्वर स्थापित कर अर्हं को मध्य में स्थापित कर ध्यान करना।

प्रणव का ध्यान : हृदय कमल में महामन्त्र प्रणव का कुंभक करके, चिंतन करना। विभिन्न इच्छा रखनेवाले काम्यकर्म-परायण योगियों को चाहिए कि संतान के लिए पीले ओंकार का ध्यान करें, वशीकरणार्थ उगते सूर्य जैसे अरुणाभ, क्षोभ में लाल, विद्वेष में कृष्ण एवं कर्मनाश के लिए चन्द्रकान्ति जैसे ओंकार का ध्यान करें।

पंचपरमेष्ठि णमोंकार मंत्र का ध्यान : हृदयकमल में श्वेत आठ पंखुड़ियों में णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं पूर्व दिशा में, णमोआयरियाणं दक्षिण दिशा में, णमो उवज्झायाणं पश्चिम दिशामें, णमो लोए सव्वसाहूणं उत्तर दिशा में, एसो पंच णमुक्कारो अग्निकोण में, सव्वपावप्पणासणों नेऋत्य में, मंगलाणं च सव्वेसिं वायव्यकोण में, पढमं हवइ मंगलं को ईशान कोण में, स्थापना करें। इन सबके मध्य में णमो अरिहंताणं की स्थापना करना तथा मन, वचन एवं काया से शुद्ध होकर एकाग्रचित्त से एक सौ आठ बार नमस्कार महामंत्र का ध्यान करना।

ह्रींकार का ध्यान : सिंविद्या का ध्यान, प्रणव, शून्य एवं अनाहत का ध्यान करने की विधि इस प्रकार कही है कि नासिका के अग्रभाग पर प्रणव, शून्य अथवा अनाहत 'ह' का ध्यान किया जावे। इस प्रकार ध्यान करने से अणिमादि अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं। समवसरण में विराजमान तीर्थंकरों के रूप में रूपस्थ ध्यान करने से भी चमत्कारी फल मिलता है। इसमें परमाराध्य अरिहन्त भगवान की वीतराग मुद्रा में स्थित निराली छटा एवं अनोखी आभा से आलोकित प्रकाशमान स्वरूप का अनिमेष दृष्टि से एकाग्र होकर ध्यान करना होता है।

शेष योगांग तो समाधि के सहायक अंग है। उन सबका उद्देश्य समाधि प्राप्ति है। जैनागमों में ध्यान के दो भेद बताए हैं। धर्मध्यान और शुक्लध्यान। इन्हें शुभगति की ओर ले जानेवाले शुभ एवं शुद्ध ध्येय भी कहते हैं। सर्वप्रथम धर्मध्यान के चार भेद बताये हैं। इन्हें योगाभ्यासी के लिए साधनाकर्म भी कह सकते हैं। जैसे कि : आज्ञा विचय, अपाय विचय,

विपाक विचय, संस्थान विचय, अर्थात् साधक जब समाधि की ओर उन्मुख होता है उस समय सर्वप्रथम श्रद्धा की आवश्यकता है।

वीतराग देव पर अखण्ड श्रद्धा, वीतराग द्वारा प्ररूपित छः द्रव्यों का स्वरूप, नेय निक्षेप, नित्यानित्य, सामान्यविशेष, सिद्धस्वरूप, निगोदस्वरूप निश्चय व्यवहार, आदि तत्व जो स्याद्वाद शैली से कथन किया गया है और उस पर पूर्ण श्रद्धा करना, अटूट आस्था और पूर्ण विश्वास के साथ स्वयं मानना, मन में चिंतन करना और प्ररूपण करना इसी का नाम आज्ञा विचय है।

जब साधक की आस्था आत्मा एवं पदार्थों के संबंध में निर्मल हो जाती है तो वह अपने कर्ममल, आवरण, अज्ञान, प्रमाद, कषाय आदि युक्त अपनी आत्मा को देखने लगता है। हंस-रूप अंतरात्मा तथा परमात्मा एवं चिद्रूप तीनों में जब एकता होने लगती है फिर साधक आत्मानंद में विभोर होकर अनुभव करने लगता है कि मैं आनंद साम्राज्य का स्वामी हूँ, सूर्यसमान केवलज्ञान का धारक हूँ, निरंजन देवाधिदेव रूप हूँ, ऐसी भावना एवं आध्यात्मिक अनुभूति के उदय होने के नाम ही अपायविचय है।

तीसरी धर्मध्यान की अवस्था विपाकविचय है जहाँ योगी आत्मदेव रूप देवाधिदेव के दर्शन में लीन होकर आनन्दाश्रु एवं रोमांच का अनुभव करता है। अदृष्ट शक्ति पात से शक्ति संचालन करता है और कर्मावरणों को क्षय कर देता है।

तब साधक चौथी अवस्था संस्थानविचय पर आरूढ़ हो जाता है। समस्त १४ राजलोक एवं अखिल ब्रह्माण्ड के विराट दर्शन करता है। नरक, स्वर्ग, मनुष्य लोक सभी लोकों को देखता है। विश्व दर्शन करते ही साधक से संकल्पविकल्प दूर हो जाते हैं, धारणा ध्येय में युक्त हो जाती है, अखण्ड निर्मलता बढ़ जाती है, अपने ही स्वभाव में आत्मा लीन हो जाती है। ऐसा योगी पुरुष मोक्षाभिमुख हो जाता है। जन्ममरण के अपेक्षा तन्तु का नाश होने का समय उपस्थित हो जाता है तो शुक्लध्यान का प्रारम्भ हो जाता है। शुद्ध ध्येय के चार अवस्थाओं का योगी को अनुभव करना होता है। पहला और दूसरा ध्येय मुक्तयोगीपन को प्राप्त कराता है। पिछले दो ध्येय रूप ध्यान अनन्तसमाधि में साधक को लीन कर देता है। जैसे कि : (१) पृथकत्व वितर्क सप्रविचार, (२) एकत्व-वितर्क अप्रविचार, (३) सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाती, (४) उच्छिन्न-क्रियानुवृत्ति। ये चारों निरालम्ब ध्यान है। केवल आत्मा एवं आत्मा के गुण पर्याय ही अवलम्बन है। सिवाय आत्मस्वरूप के दूसरी किसी

वस्तु का सहारा नहीं लिया जाता। वर्तमान में समाधि बहुत सस्ती कर दी गई। आँख मूँदकर बैठ जाने का नाम समाधि नहीं है, समाधि तक पहुँचने के लिए अनंत सीढ़ियों को पार करना पड़ता है। समाधि तो अन्तिम अवस्था है, जहाँ पहुँचकर शेष कुछ बचता नहीं है क्योंकि भ्रू भाग पर मन को केन्द्रित कर जब अंतरजगत् को साक्षात् देखने की शक्ति प्राप्त होती है तब शुक्लध्यान का प्रारम्भ होता है।

जैनाचार्यों का कहना है कि सब ध्यान मार्ग समाधि के किनारे ला सकते हैं। आगे तो योगी स्वयं ही ध्येयाकार होता है। मोक्ष न तो पूर्वमार्ग में है और न ही पश्चिममार्ग में। उलटे मार्ग में मोक्षप्राप्ति का प्रश्न ही नहीं पैदा होता अपितु मोक्ष तो मार्ग मुक्त है। मार्ग का समाप्त हो जाना ही मोक्ष है। अतः समाधि का प्रारम्भ शुक्लध्यान से ही हो जाता है जिसमें योगी सभी से ऊपर उठकर अपने निज गुणों को अपनी आत्म पर्याय अपने आत्म-गुणों में संक्रमण करते हैं। आत्मा, आत्मा में ही रमण करता है। किन्तु सप्रविचार-वितर्कसहित उपयोग इसलिए कहते हैं कि इस ध्यानावस्था में एक के चिंतन के साथ दूसरे का चिंतन होता है। जैसे आत्मा से गुणों का और गुणों से पर्याय का। आत्मगुण एवं पर्याय का चिंतन करने से इसे विकल्प-सहित आत्मरमण, आत्मदर्शन आत्मसंवाद एवं आत्ममनन भी कहते हैं। यही पृथक्त्व-वितर्क सप्रविचार ध्यान समाधि है।

किन्तु एकत्व-वितर्क अप्रविचार की अवस्था में ध्याता आत्म गुण एवं पर्याय की एकता साध लेता है। संसार भ्रान्ति का सम्पूर्ण नाश हो जाता है। मात्र समरस, आनन्दमयी सहज स्थिति रह जाती है। ज्ञान और ज्ञाता एका-कार हो जाते हैं। अविद्यारात्रि समाप्त हो जाती है। निराकार सूक्ष्मध्यान प्राप्त हो जाता है। इसी अवस्था को ब्रह्मस्वरूप भी कहते हैं। उन्मनी भाव में पहुँचा हुआ योगी अन्य कुछ भी नहीं सोचता। मैं कौन हूँ, कहाँ जाऊँगा ये सब विकल्प समाप्त हो जाते हैं। नेत्रों पर छाया अज्ञानावरण दूर हो जाता है। सिद्धपुरी का द्वार खुल जाता हैं। ध्याता और ध्यान में, दोनों ध्येय में, एकीभाव को प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रक्रिया से योगी समरसी भाव और एकीकरण में सफल हो जाता है किन्तु श्रुतज्ञान का भेद होने के कारण इसे वितर्क कहते हैं। अप्रविचार का अर्थ है विकल्प रहित दर्शन-ज्ञान-चारित्र का एक समय में कारणकार्यपन से चिंतन करना। उसी का नाम एकत्व-वितर्क अप्रविचार ध्येय है।

तीसरा और चतुर्थ ध्यान प्रकार तो पूर्ण समाधि का अंतिम स्वरूप है जहाँ योगी कर्ममल को पूरी तरह भस्म कर देता है। शुक्लध्यान द्वारा ब्रह्मज्ञानी परब्रह्मस्वरूप हो जाता है। पृथ्वी पर रहता हुआ भी योगी शाखाग्रभाग पर स्थित की तरह हो जाता है क्योंकि शुक्लध्यान के सहारे ही योगी, गगन स्वरूप सनातन, सहजानंद एवं विदेह मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

मणि, अग्नि, तारे, चन्द्र और सूर्य तो इस पृथ्वी को ही आभान्वित करते हैं किन्तु योगी तो स्वाभाविलय अवस्था से प्राप्त अनन्त ज्योति से समस्त विश्व को आलोकित करता है। अनाहतनाद की अलौकिक ध्वनि से योगी उसमें लीन रहता है। स्थूल सूक्ष्म और साकार शुभ ध्यान से ऊपर उठकर निराकार रूपातीत ध्यान में एकाकार हो जाता है। ब्रह्मद्वार में विचरण एवं निराकार स्वरूप आत्मध्यान से योगी परमात्मपद को प्राप्त हो जाता है।

सूक्ष्म मन, वचन एवं काया की प्रवृत्ति को भी योगी शैलेशीकरण करके उसे रोक देता है और अयोगी होकर अप्रतिपाति (जिसका कभी पतन न हो) निर्मल ज्ञान एवं शुद्धात्म स्वरूप मेंस्थिरता को प्राप्त होता है।

समाधि की अन्तिम अवस्था में योगी सभी प्रकार की कर्म प्रवृत्तियों एवं क्रियाओं से रहित हो जाता है। इसलिए उसे उच्छिन्न क्रिया निवृति कहते हैं। सामान्य योगी के लिए जो योगी की व्याख्या की गई है, वे मन के आश्रित हैं। मन की स्थिरता होते ही सामान्य साधक योगावस्था की ओर चल पड़ता है, किन्तु यह शुक्लध्यान के तीसरी और चौथी अवस्था तक पहुँचने वाला योगी सामान्य साधक नहीं होता, अपितु केवलज्ञानी, महापुरुष वीतराग अवस्था को पहुँचे हुए परमयोगी महापुरुष होते हैं। उनके अन्तिम सीढ़ी केवल देहिक की स्थिरता मात्र है, सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल आत्म प्रदेशों की स्पन्दना रूप क्रिया भी अनिवृतिवाली होती है। सूक्ष्मकाययोग क्रिया के मिटते ही सम्पूर्ण कर्ममलों से रहित निरंजन, परमब्रह्म रूप आत्मा मोक्ष में ही सदा शाश्वत काल के लिए स्थित हो जाता है।

इस महापरिनिर्वाण की अवस्था को शास्त्रों में शैलेशी-दशा (मेरूपर्वत की तरह अकंपनिश्चल दशा) भी कहा गया है। इसी अवस्था में केवली, सकलयोगातीत, लेश्यातीत, त्रिभागन्यूनशरीर, घनप्रदेशी, अस्पृश्यमान, आकाशप्रदेशी, उच्छिन्न, सर्वक्रिया अप्रतिपाती होकर सिद्ध, बुद्ध, शुद्ध, मुक्त, स्वयं परमात्मा बन जाते हैं।

चित्रसेन व पद्मावती के प्रसंग में

[जैन कथानक]

बन्धुवर पाणिग्राही के आमंत्रण पर कटक गया था कुछ पुरातन ताड़पत्रीय ग्रन्थ देखने के लिए। वहीं परिचय हुआ नीलकण्ठ दास के साथ। वह उत्कल विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्व का छात्र था। उसका मकान था कोरापुट जिले के भैरवसिंहपुर ग्राम में। उसी के मुख से सुना कि भैरवसिंहपुर किसी समय जैन धर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। उस ग्राम में अनेकों जैन मूर्तियाँ पायी गयी हैं। जिनमें कोई-कोई मूर्ति पाँच फुट या उससे भी अधिक बड़ी है। एक फुट से कम या एक फुट की तो इतनी मूर्तियाँ पायी गयी हैं जिनका कोई लेखा-जोखा ही नहीं है। उसने एक ऋषभ देव की मूर्ति के विषय में बताया जिसका व्यवहार ग्रामवासी कुठार, टांगी आदि की धार के लिए पत्थर रूप में करते हैं। उसने वहाँ के एक प्राचीन शिव मन्दिर की बात भी बतायी जहाँ पाँच फुट की एक बड़ी शान्तिनाथ की मूर्ति दीवाल पर लगी हुयी है। गाँव से कुछ दूर अरण्य के सीमा प्रदेश पर वह मन्दिर अवस्थित है। नीलकण्ठ ने कहा—चलिए ना दो दिनों के लिए। आप स्वयं ही अपनी आँखों से सब कुछ देख लें। मैं उसके आमंत्रण की उपेक्षा नहीं कर सका। क्योंकि जीवन में ऐसे अवसर कम ही आते हैं। अतः दूसरे ही दिन भैरवसिंहपुर जाने के लिए उसके साथ निकल पड़ा।

भैरवसिंहपुर जयपुर सीमा का एक सम्पन्न ग्राम है। कई घरों की वहाँ वस्ती है। गाँव के मकानों को देखकर वहाँ के अधिवासियों की अवस्था अच्छी है ऐसा स्पष्ट हो रहा था। नीलकंठ के घर जब पहुँचा तब शाम ढल गयी थी। शायद नीलकंठ की माँ ने ही दरवाजा खोला था। नीलकण्ठ के साथ एक अपरिचित व्यक्ति को देखकर वे माथा ढककर वापिस जा रही थीं किन्तु, नीलकंठ ने उन्हें प्रणाम कर कहा—माँ, ये आज हमारे अतिथि हैं। एक दो दिन यहीं रहेंगे। शिव मन्दिर और जैन मूर्ति देखने आए हैं।

नीलकण्ठ की देखा-देखी मैंने भी उनके चरण छू कर प्रणाम किया। उन्होंने भी नीलकण्ठ की ही तरह मेरा चिबुक स्पर्श कर मुझे आशीर्वाद दिया। बोलीं, तुम लोग घर में जाकर बैठो, मैं लालटेन लेकर आती हूँ।

मैं नीलकण्ठ का अनुसरण करता हुआ उनके बैठक खाने में प्रविष्ट हुआ। नीलकण्ठ की माँ लालटेन रख गयी। कुछ देर के पश्चात नीलकण्ठ के पिताजी भी वहाँ उपस्थित हुए। वे मेरी पुरातत्व में रूचि है सुन कर प्रसन्न हुए। बोले, जैन धर्म का ध्वंशावशेष उड़ीसा में कहाँ नहीं है? एक समय तो सारा उत्कल ही जैन धर्मावलम्बी था। केवल भैरवसिंहपुर ही नहीं कोरापुट के नन्दपुर में भी अनेक जैन मूर्तियाँ पायी गयी हैं। कटक जिले के ओसिया पाहाड़, चन्दोल, जाजपुर आदि में भी कम जैन मूर्तियाँ नहीं हैं? खण्डगिरि और उदयगिरि तो जैन पुरातत्व से भरा पड़ा है। पुरी को ये चक्रतीर्थ कहते हैं किन्तु नहीं जानते वह विष्णु का सुदर्शन चक्र नहीं भगवान ऋषभनाथ प्रवर्तित धर्म चक्र है—ऐसी बहुत-सी बातें उन्होंने बतलायी। लगा केवल जैन पुरातत्व का ही नहीं जैन धर्म इतिहास आदि का भी उनका ज्ञान सुगम्भीर है।

इसी वार्तालाप के मध्य ही मैं एकबार नीलकण्ठ से बोला अभी तो रात अधिक नहीं हुयी है। चलो ना वह शिव मंदिर देख आएँ। किन्तु नीलकण्ठ ने मुझे रोकते हुए कहा उसकी इतनी क्या जल्दी है? आज खा-पीकर विश्राम करिए। कल सुबह मैं आपको वहाँ ले जाऊँगा, दिन के प्रकाश में सब कुछ ठीक से देख सकेंगे। अतः खा-पीकर नीलकण्ठ के कथनानुसार सो गया। उसी बैठक खाने में मेरी सोने की व्यवस्था की गयी थी।

उस समय रात कितनी हो गयी थी कह नहीं सकता सहसा मधुर कण्ठ की गीतध्वनि से मेरी नींद टूट गयी। यह गीतध्वनि कहाँ से आ रही है जानने के लिए घर का दरवाजा खोलकर बाहर आ खड़ा हुआ। रात्रि ज्योत्स्नामयी थी, सर्वत्र चाँदनी बिखरी हुयी थी। उस चाँदनी में गृह-मकान, पेड़-पौधे, दूर का अरण्य सभी स्नात होकर एक अपार्थिव रूप धारण किए हुए थे। परिचित व अपरिचित की सीमा रेखा मानो खो गयी थी।

जिस ओर से वह गीतध्वनि आ रही थी मैंने उस ओर देखा—दूर स्थित अरण्य के अलावा और कुछ नहीं देख पाया। आने के समय नीलकण्ठ ने उसी ओर शिवमन्दिर स्थित है बतलाया था। नीलकण्ठ को उठाऊँ कि नहीं कुछ स्थिर नहीं कर पाया। मैं भी क्या करूँ समझ में नहीं आ रहा था। एकबार तो सोचा घर का दरवाजा बन्द कर सो जाऊँ। किन्तु वह सम्भव नहीं हो सका। वह गीतध्वनि मुझे अदृश्य रज्जु के बन्धन से उसी ओर प्रवल वेग में खींचने लगी। मैं यन्त्र-चालित सा घर का दरवाजा लगाकर जिधर से वह गीतध्वनि आ रही थी उसी ओर चल पड़ा।

पथ अनजान होने पर भी स्वर-लहरी का अनुसरण करता हुआ मैं आगे बढ़ने लगा। क्रमशः गाँव पार कर अरण्य की सीमा पर पहुँच गया। उस अरण्य में कुछ और आगे बढ़ते ही वह प्राचीन जीर्ण शिव मन्दिर दिखाई पड़ा। उसी शिव मन्दिर से नारी कण्ठ की वह स्वर-लहरी आ रही थी।

मैंने उस मन्दिर में प्रवेश किया। देखा मन्दिर का भीतरी स्वरूप बाहरी रूप से एक दम भिन्न था। बाहर मन्दिर का जो जीर्ण रूप दिखायी पड़ता है, भीतर वैसी जीर्णता एकदम नहीं है। नीलकण्ठ ने इसे शिव मन्दिर कहकर अभिहित किया था पर देखा यहाँ तो शिवमन्दिर नहीं, शान्तिनाथ भगवानका मन्दिर है। भगवान शान्तिनाथ की भव्य प्रतिमा गर्भगृह के संग मरमर की वेदी पर प्रतिष्ठित है। गर्भगृह के सन्मुख ही है चतुष्कोण सभामंडप। पंक्ति-बद्ध स्तम्भ पर उस सभामण्डप की छत स्थित थी। स्तम्भों, छत और मेहरावों पर किया हुआ कारुकार्य अद्भुत और सुन्दर था। रात्रि होने पर भी मणिदीप के प्रकाश में मैं सब कुछ स्पष्टतया देख रहा था। गर्भगृह के सन्मुख प्रस्तर वेदी पर स्वर्णाधार में दीप जल रहा था। धूपदान से अगरू धूप और गुग्गुल आदि की सुगन्ध उठ रही थी। स्वर्ण थाल में रखे कूटज, कुन्द और सिन्धुवार पुष्पों के सुवास से मन्दिर महक रहा था। किन्तु अभी तो और आश्चर्य बाकी था। देखा उस सभामण्डप में छह सात तरूण युवतियाँ मृरज मुरली ढोलक बजाकर नृत्यगीत कर रही थी। मानवियों में ऐसा रूप नहीं होता। तब क्या वे गन्धर्व, किन्नर या देवकन्याएँ थीं जिनके विषय में इतने दिनों से जो सुनता आ रहा था ? ग्रन्थों में भी पढ़ा था कि ये रात्रि के निर्जन में अर्हतों को अपनी भक्ति निवेदित करने आती रहती है। उनके जूड़ों से मन्दार पुष्प की पंखुड़ियाँ सभामण्डप के कुट्टिम तल पर झर रही थी और उनके कदमों से विमर्दित हो रही थी। उन सभी को मैंने देखा किन्तु उनमें से एक को देखते ही भ्रमर की तरह मेरे नेत्र उस पर अटक गए। ऐसा नहीं कि वह सबसे अधिक सुन्दरी थी बल्कि इसलिए कि मुझे ऐसा लगा जैसे मैंने इसे कहीं देखा है किन्तु स्मरण कर नहीं पा रहा था। मन जैसे कह रहा था—देखा क्या, यह तो तुम्हारी अपनी ही है। एक बार सोचा मैं सभामण्डप में प्रवेश कर उसके सन्मुख खड़ा हो आऊँ, तभी सोचा नहीं ऐसा करने से उसके भक्ति निवेदन में बाधा आ जाएगी। अतः जब तक नृत्य गीत समाप्त न हो जाए मैं वहीं एक स्तम्भ की आड़ में बैठकर उसकी प्रतीक्षा करूँ। ऐसा सोचकर जिससे वह मुझे देख न सके इस भाँति एक स्तम्भ के पीछे जाकर बैठ गया और उसका अपूर्व नृत्य-गीत देखने-सुनने लगा।

नहीं कह सकता वह नृत्य-गीत कब तक चला। किन्तु मुर्गा बोलने के पहले ही वे सब कहीं अदृश्य हो गयीं। केवल वही खड़ी रही जिसे मैंने अत्यन्त अपना समझा था। वह उसी स्तम्भ की ओर बढ़ने लगी जिसकी ओट में मैं छिपकर बैठा था। उसे मेरी ओर आते देखकर मैं उठकर उसके सामने खड़ा हो गया।

वह मुझे देखकर कुछ क्षण तो विस्फारित नेत्रों से मुझे देखती रही। बहुत दिनों पश्चात् विदेशागत प्रियजन को देखकर भय, विस्मय और आनन्द जनित जो सलज्ज माधुर्य प्रोषितभर्तृका के नेत्रों में, मुख में फूट पड़ता है वही भाव उसके नेत्रों में मुख में फूट पड़ा। क्रमशः एक स्निग्ध हास्य उसके अधरोष्ठ पर बिखर गया। उसने मेरे और सन्निकट आकर जिज्ञासा की—कब आए?

उसके मधुर कण्ठ स्वर से मेरा समस्त शरीर रोमांचित हो उठा। उन दो शब्दों में इतना माधुर्य रह सकता है कभी सोचा ही नहीं था। उन दो शब्दों में मानो उसने अपने हृदय की समस्त मधुरता व कोमलता को एक साथ निचोड़ डाला था। वही मधुरता और कोमलता मेरी पूरी देह में व्याप्त हो गयी। मैंने बोलना चाहा किन्तु बोल न सका। केवल भावाविष्ट की तरह उसके मुख की ओर देखता रहा।

मुझे इस प्रकार देखते हुए देखकर उसने मेरे कन्धों पर हाथ रखा। बोली, मुझे नहीं पहचान पाए? मैं हूँ तुम्हारी पद्मा—पद्मावती।

इसबार मैंने जवाब दिया—पहचान गया हूँ। किन्तु तुम तो पुरुष विद्वेषिनी थी?

पद्मावती ने हँसकर कहा, थी किन्तु अब नहीं हूँ। मैंने तुम्हें गलत समझा था। मुझे क्षमा कर दो।

किन्तु मैंने तो तुम्हें कभी गलत नहीं समझा था कहकर उसे बाहुबन्धन में लेने लगा तभी मुर्गा बोल उठा।

पद्मावती बोली, छोड़ो, समय हो गया है कहकर मेरे आश्लेष से स्वयं को मुक्त कर उस स्तम्भ की ओर बढ़ गयी।

ठहरो पद्मा। बहुत दिनों से मिली हो कहता हुआ मैं उसे पकड़ने दौड़ा किन्तु पकड़ पाने के पूर्व ही वह उस स्तम्भ में प्रविष्ट हो गयी। मैं हतप्रभ-सा उस ओर देखता ही रह गया।

उसके अदृश्य होने के साथ ही साथ सभामण्डप के समस्त मणि दीप एक बारगी निर्वापित हो गए। जिस सभामण्डप में चन्दन और अगरु की सुगन्ध उठ रही थी, जो पुष्प सुवास से महक रहा था वह सभामण्डप न जाने कहाँ अदृश्य हो गया। एक जीर्ण शीर्ण भग्न अन्धकारमय मन्दिर में मैं खड़ा था। शायद मेरी चेतना भी लुप्त हो गयी थी। सहसा नीलकण्ठ के कण्ठ स्वर से मैं जाग उठा। अविनाशबाबू, आप कहाँ हैं ?

मैं यहाँ हूँ—कहता हुआ मैं मन्दिर के बाहर आकर खड़ा हो गया।

मुझे मन्दिर से निकलते देखकर नीलकण्ठ बोल उठा, सुबह आपको बिछौने पर न देखकर सोचा शायद आप बाहर गए हुए हैं। किन्तु बहुत खोज पड़ताल के पश्चात भी जब बाहर आपको नहीं पाया तब सोचा, हो सकता आप इधर आए हों। अतः आपको खोजता हुआ यहाँ आया हूँ। आप भी क्या खूब ? सुबह ही उठकर चले आए थे ? मुझे पुकार लेते।

बोला मैं यहाँ सुबह-सुबह नहीं आया हूँ—भर रात्रि में ही निकल पड़ा था।

भर रात्रि में ? किन्तु क्यों ?

नहीं जानता। कौन तो मुझे आकृष्ट कर यहाँ ले आया। फिर प्रारम्भ से अन्त तक सभी घटना उसे कह सुनायी केवल पद्मावती से मेरी जो बातचित हुये उसे दबा गया। सब सुनकर वह स्तम्भित-सा रह गया। फिर बोला, हम यहाँ पीढ़ी दर पीढ़ी रहते आ रहे हैं। लेकिन ऐसी अद्भुत बात तो कभी नहीं सुनी। आश्चर्य !

नीलकण्ठ के पिताजी को जब सब कुछ सुनाया तो वे सिर हिलाते हुए कहने लगे यद्यपि गीतध्वनि हमने भी कभी नहीं सुनी फिर भी तुमने जो कुछ देखा है, सुना है ऐसी घटना होने की बात उड़ीसा के लोक साहित्य में आता है। क्या तुमने चित्रसेन-पद्मावती की कहानी पढ़ी है ?

बोला, नहीं।

तब सुनो कहते हुए उन्होंने कथा प्रारम्भ की—

बहुत दिनों पूर्व की कहानी है। कलिंग देश के वसन्तपुर में वीरसेन नामक एक राजा राज्य करता था। उसके पुत्र का नाम था चित्रसेन। चित्रसेन देखने में खूब सुन्दर था। चित्रसेन और उसका मित्र मन्त्रीपुत्र रत्नसार दोनों ही देखने में खूब सुन्दर थे। जब वे एक साथ नगर भ्रमण को निकलते तब उन्हें देखने के लिए नगर की स्त्रियाँ सड़क के किनारे, झरोखों में, वातायनों में,

जहाँ जिसे स्थान मिलता, उनकी एक झलक पानेको, उनके आगमनकी प्रतीक्षा करते। इससे क्षुब्ध होकर नगर निवासियों ने राजा से निवेदन किया कि राजपुत्र और मन्त्रीपुत्र नगर की स्त्रियों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। यह सुनकर राजा ने उन दोनों को नगर से निर्वासित कर दिया।

नगर परित्याग कर वे दोनों चलते-चलते एक अरण्य के सीमान्त पर आ पहुँचे। सन्ध्या होती देखकर दोनों ने एक वृक्षतले आश्रय लिया। राजपुत्र थके हुए तो थे ही अतः सोते ही उन्हें नींद आ गई। मन्त्रीपुत्र जागता रहा। जैसा तुमने कहा मध्यरात्रि में मन्त्रीपुत्र ने भी ऐसी ही एक गीत ध्वनि सुनकर राजपुत्र को जगाया और दोनों उसी मन्दिर में गए। वहाँ उन्होंने भगवान शान्तिनाथ के मन्दिर में गन्धर्व, देव और किन्नर कन्याओं को नृत्यगीत के साथ अष्टाह्निका उत्सव करते हुए देखा।

मैं बीच में ही बोल उठा, आश्चर्य! मैंने जो कुछ देखा बिल्कुल ऐसा ही था। तब क्या वे गन्धर्व, देव और किन्नर कन्याएँ थीं? किन्तु वह लड़की कौन थी जो उनमें विशिष्ट थी?

अब उसी की बात कह रहा हूँ कहकर वे बोलने लगे—उसका नाम पद्मावती था।

नाम सुनते ही मैं चौंक पड़ा। मन ही मन सोचा उसने भी अपना परिचय पद्मावती नाम से ही दिया था। पूछ उठा, कौन सी पद्मावती?

रत्नपुर के राजा पद्मरथ की कन्या पद्मावती। हाँ तो मैं कह रहा था उस मन्दिर में उन्होंने एक स्तम्भ पर एक अपूर्व सुन्दरी तरुणी का प्रतिरूप उत्कीर्ण किया हुआ देखा। उस प्रतिरूप को देखकर राजपुत्र मूर्च्छित हो गया। होश आने पर दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ बोला, यदि विवाह करना पड़ा तो इसी से करूँगा, नहीं तो देह परित्याग कर दूंगा। मन्त्रीपुत्र एक विषम स्थिति में पड़ गया। उसने उसे समझाने की बहुत चेष्टा की किन्तु नतीजा कुछ नहीं हुआ। राजपुत्र की तो अब एक ही रट थी इसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकूँगा।

नीलकण्ठ बोला, राजपुत्र निश्चय ही उन्मादी हो गया था। वह भूल गया कि प्रतिरूप तो शिल्पी की कल्पना मात्र ही तो थी, रक्तमांस की मानवी तो नहीं थी।

थी कहकर नीलकण्ठ के पिताजी कहने लगे जब राजपुत्र उस अर्द्ध उन्मादी अवस्था में था तभी एक श्रमण वहाँ आ पहुँचे। राजपुत्र की अवस्था देखकर

वे मन्त्री-पुत्र से बोले, तुम इसे लेकर रत्नपुर जाओ। जिसका यह प्रतिरूप है वह वहाँ के राजा पद्मरथ की कन्या है। पुरुष विद्वेषिनी होने के कारण अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ है। राजा ने घोषित किया है जो व्यक्ति राजकुमारी का पुरुष विद्वेष दूर करेगा उसी के साथ राजकुमारी का विवाह होगा। चित्रसेन उसका पुरुष विद्वेष दूर करेगा।

मन्त्रीपुत्र ने उद्विग्न स्वर में पूछा—किन्तु किस प्रकार ?

श्रमण मुस्कुराए। बोले, सुनो—चित्रसेन व पद्मावती पूर्वजन्म में पति-पत्नी थे। उस जन्म में वे हंस और हंसिनी रूप में पम्पा सरोवर के तट पर रहते थे। उनका एक शिशु शावक भी था। उसी सरोवर के निकट जो अरण्य था उस अरण्य में एक बार दावाग्नि लग गयी। निरापद आश्रय के सन्धान में हंस उड़ा किन्तु उसके लौटने के पूर्व ही उसकी पत्नी और शावक झुलस कर मर गए। मरने के पूर्व हंसिनी के मन में सन्देह हुआ कि उसका पति आश्रय खोजने के बहाने अन्यत्र जाकर किसी हंसिनी के साथ सुख से रहने लगा है। वही हंसिनी श्रमण दान की प्रशंसा के कारण पद्मावती के रूप में उत्पन्न हुयी है। यही उसके पुरुष विद्वेष का कारण है।

मन्त्रीपुत्र ने कहा, उसके पुरुष विद्वेष का कारण तो समझा किन्तु मेरा मित्र उसका विद्वेष किस प्रकार दूर करेगा ?

श्रमण बोला, इस प्रकार—कारण वह हंस कृतघ्न नहीं था। निरापद आश्रय की सन्धान कर जब वह लौटा एवं पत्नी और शावक को मृत पाया तो उसी दावाग्नि में गिरकर प्राण त्याग दिया। इसी के अनुरूप एक चित्र अंकित कर तुम्हारा मित्र उस पद्मावती को दिखाए। उसे देखते ही पद्मावती को पूर्वजन्म की स्मृति हो जाएगी और यह जानकर कि हंस ने उसके साथ कपट नहीं किया उसका पुरुष विद्वेष दूर हो जाएगा। उस समय वह जान जाएगी कि चित्रसेन ही वह हंस है तब उसके साथ ही विवाह करेगी।

मन्त्रीपुत्र ने तब पद्मावती के प्रतिरूप के विषय में पूछा। यह प्रतिरूप यहाँ कैसे आया ? प्रत्युत्तर में श्रमण ने कहा—शिल्पी सगर एक बार तीर्थयात्रा के लिए जाते हुए रत्नपुर में आया। वहाँ राजकुमारी के पुरुष विद्वेष की बात सुनकर दुःखी हुआ और उसका एक प्रतिरूप उत्कीर्ण किया। वही प्रतिरूप इस मन्दिर के निर्माण के समय एक स्तम्भ में ग्रथित कर दिया गया। इसका यही उद्देश्य था कि यदि किसी दिन हंस का जीव यहाँ आया तो इस प्रतिरूप को देखकर शायद वह उसका अनुसन्धान करे।

नहीं जानता शिल्पी सगर, हंस की जो कथा हमने सुनी वह जानते थे या नहीं। लगता है अवश्य ही जानते थे। नहीं तो पद्मावती का यह प्रतिरूप उत्कीर्ण कर इस स्तम्भ में क्यों बैठाते? किन्तु मैं सोच रहा था वह गीतध्वनि मैंने क्यों सुनी? और क्यों उस गीतध्वनि को सुनकर मुग्ध बना-सा उस शिवालय में पहुँचा? क्यों पद्मावती मुझे एकदम अपनी लगी? क्यों पद्मावती ने मुझसे बात की? तब मैं कौन हूँ? तो क्या मैं ही किसी जीवन में चित्रसेन था।

सहसा नीलकण्ठ के कण्ठस्वर से मेरा चिन्ताजाल छिन्न हुआ। वह बोला, आपने कहा था ना कि पद्मावती उसी स्तम्भ में प्रवेश कर गयी। तब निश्चय ही वहाँ सगर कृत पद्मावती का प्रतिरूप अभी भी उत्कीर्ण है।

यह भी सम्भव है—कहता हुआ मैं खड़ा हो गया। किन्तु तब यह बात मेरे मन में क्यों नहीं आई।

हम तीनों तभी उस मन्दिर की ओर चल पड़े। सचमुच ही जिस स्तम्भ की आड़ में मैं बैठा था उस स्तम्भ पर एक अपरूप सुन्दरी तरूणी का प्रतिरूप उत्कीर्ण था।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

षष्ठ सर्ग

भव्य जीव रूप भ्रमर द्वारा आस्वादित जूही माल्य स्वरूप भगवान मल्लीनाथ की वाणी जययुक्त हो। मैं अब कर्ण के लिए अमृतरूप उनका जीवन वर्णन करूँगा।

इसी जम्बूद्वीप के अपर विदेह में सलीलवती विजय में वीतशोक नामक एक नगर था। वहाँ बल नामक राजा राज्य करते थे। बल में वे अकेले ही एक वाहिनी तुल्य थे। शत्रु सैन्य रूप वाहिनी को उखाड़ने में हस्ती रूप और रूप में वे देव तुल्य थे। उनके धारिणी नामक पत्नी थी जिसके गर्भ से महाबल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वे समस्त बल के मूर्त प्रतीक थे। कारण उनकी माँ ने उनके जन्म के पूर्व स्वप्न में सिंह देखा था। वे जब यौवन को प्राप्त हुए तब उन्होंने एक दिन कमल श्री आदि पाँच सौ राजकन्याओं के साथ विवाह किया। महाबल के अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण और अभिचन्द्र ये छः बाल्य मित्र थे। एकदिन उसी नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व कोण में इन्द्रकुब्ज उद्यान में कुछ मुनिगण आकर ठहरे। राजा बल ने उनकी देशना सुनी और संसार से विरक्त होकर महाबल को सिंहासन पर बैठाकर मुनि दीक्षा ग्रहण कर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया।

सिंह स्वप्न द्वारा सूचित कमल श्री रानी के गर्भ से महाबल के बलभद्र नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। क्रमशः बलभद्र ने यौवन प्राप्त किया। उसे अपने प्रतिरूप में महाबल ने युवराज पद पर अभिषिक्त किया। और स्वयं अपने छः मित्रों सहित जिन धर्म श्रवण करने लगे।

एक दिन महाबल ने अपने मित्रों से कहा, मित्रगण मैं संसार भय से भीत होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। तुमलोग क्या करोगे बोलो? उन्होंने उत्तर दिया, मित्र, जिस प्रकार हम छहों ने एक साथ सांसारिक सुख भोग किया उसी प्रकार भविष्य में एक साथ मुक्ति का आनन्द प्राप्त करेंगे। तब महाबल ने अपने पुत्र बलभद्र को सिंहासन पर बैठाया। इसी प्रकार उनके छ मित्र राजाओं ने भी अपने अपने पुत्रों को सिंहासन पर बैठा दिया। तदुपरान्त

सातो ने मुनि वरधर्म से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होकर सातों ने यह प्रतिज्ञा की हममें से एक जैसी तपस्या करेगा शेष छः भी वैसी ही तपस्या करेगा। ऐसा निश्चय कर मोक्ष के लिए प्रयत्नशील वे एक दिन वाद एक दिन इस प्रकार समान रूप से तपस्या करने लगे।

अधिक फल की कामना से महाबल ने अपने मित्रों को प्रतारित किया। वे पारने के दिन आज मेरे माथे में दर्द है, आज मेरा पेट ठीक नहीं है, मुझे जरा भी भूख नहीं ऐसा कहकर पारना न कर व्रत कर लेते। उच्च परिणाम, उग्र तप और अर्हत् आदि २० स्थानक की उपासना कर उन्होंने एक ओर तीर्थंकर गोत्रकर्म उपार्जित किया दूसरी ओर तपस्या में मिथ्याचार करने के कारण स्त्री-देह का भी वन्ध किया।

उनके जीवन की ८४ लाख पूर्व की आयुष्य जब शेष हो गयी और संयम पालन के ८४ हजार वर्ष व्यतीत हो गये तब उन्होंने अनशन ग्रहण कर लिया। दो महीने अनशन के पश्चात् अप्रमत्त अवस्था में देह त्याग कर वे सभी बैजयन्त नामक द्वितीय अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ उनकी आयु ३२ सागरोपम की हुयी।

इसी जम्बूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में मिथिला नामक एक नगरी थी। वहाँ के अधिवासियों को धर्म में अटूट श्रद्धा थी। स्वर्ण शिखर युक्त वहाँ की प्रासाद श्रेणी सूर्य शोभित पूर्वांचल-सी प्रतीत होती। रत्नों जड़ित इस नगरी को देखकर लोग कहानियों में वर्णित रत्न जड़ित अलकादि नगरियों पर विश्वास कर लेते। जिस प्रकार स्वर्ग में देव विहार करते हैं उसी प्रकार वहाँ के अधिवासियों के स्व सुन्दरी ललनाओं सहित विहार करने के कारण वह नगरी द्वितीय स्वर्ग हो ऐसा भ्रम होता।

यहाँ के राजा थे कुम्भ। क्षीर समुद्र के अमृत पूर्ण कुम्भ की तरह वे लक्ष्मी के निवास रूप इक्ष्वाकु वंश के रत्न-कुम्भ थे। समस्त नदियाँ जिस प्रकार समुद्र की अनुगामिनी होती है उसी प्रकार सभी रानियाँ उनकी अनुगामिनी थी। रोहण रत्न की तरह वे समस्त प्रकार के सदाचारों के उत्स थे। बुद्धिमान वे जिस प्रकार ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता थे उसी प्रकार अस्त्र विद्या के भी पारंगत। वे पृथ्वी से कर ग्रहण करते किन्तु जो असमर्थ थे, दलित थे उनमें उसको बाँट देते थे। विवेकवान वे यश के आकांक्षी थे किन्तु अर्थ के नहीं। अर्थ के विषय में उदार होने पर भी राज्य सीमा के संरक्षक के रूप में वे उदार नहीं थे। धर्म के अनुगत होने पर भी द्यूत के वे अनुगत नहीं थे।

इन्द्र के शची-सी उनकी पत्नी का नाम था प्रभावती, उसका मुखमंडल चन्द्र को भी लज्जित करता था। वे धरती की अलंकार रूपा थी। उनका अलंकार था धर्म। केयूर अंगद आदि तो व्यवहार के लिए धारण करती थी। अपने निष्कलंक चरित्र से पृथ्वी को पवित्र कर, आनन्दकन्द कर वे जीवंत तीर्थ रूप में परिगणित होती। चन्द्र जिस प्रकार दाक्षायनी के साथ सुख भोग करता है उसी प्रकार राजा कुम्भ प्रियकारिनी पद्मावती के साथ सुखभोग करते।

वैजयन्त विमान की आयुष्य पूर्ण होने पर महाबल का जीव वहाँ से च्युत होकर फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी के दिन चन्द्र जब अश्विनी नक्षत्र में अवस्थित था प्रभावती के कुक्षि में प्रविष्ट हुआ। प्रभावती ने तीर्थंकर के जन्म सूचक चौदह महास्वप्न देखे। गर्भधारण के तीसरे महीने में पंच वर्णीय और सुगन्धित पुष्पों की शय्या पर सोने का उन्हें दोहद उत्पन्न हुआ। वाण व्यन्तर देवों ने उस दोहद को पूर्ण किया। गर्भकाल पूर्ण होने पर अग्रहायण शुक्ला एकादसी के दिन चन्द्र जब अश्विनी नक्षत्र में अवस्थित था तब पूर्व-जन्म कृत मायाचार के कारण कन्या रूप में १९वें तीर्थंकर का जन्म हुआ। कुम्भलांछन और सर्व सुलक्षणों से युक्त उनके देह का वर्ण गाढ़ा नीला था। दिक्कुमारियों ने आकर उनका जन्म कृत्य सम्पन्न किया। इन्द्रों ने उन्हें मेरु पर्वत पर ले जाकर स्नानाभिषेक किया। शक्र ने उनकी देह पर दिव्य विलेपन कर पूजा की। अन्ततः आरती कर इस प्रकार स्तुति की—

हे त्रिलोक पति, हे तीन गुण के धारक, हे उन्नीसवें तीर्थंकर, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे भगवन्, बहुत दिनों के पश्चात् आपके दर्शन का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। साधारण मनुष्य जिन देवों को देख नहीं पाते उन्हीं देवों का देवत्व, हे देवादिदेव, आपके जन्माभिषेक के समय आपका दर्शन कर सार्थक हुआ है। एक समय आप अच्युतेन्द्र थे, एक समय मानव, अतः संसार चक्र से हमारी रक्षा करिए। पृथ्वी के स्वर्ण किरीट तुल्य इस मेरु पर्वत पर नीलकान्त मणि की तरह आप शोभित हो रहे हैं। भव्य जीव आपके स्मरण करने मात्र से ही मुक्ति को प्राप्त करेंगे मानो इसीलिए आपने जन्म ग्रहण किया है। फिर जिन्होंने आपको देखा है, आपकी स्तुति की है उनका तो कहना ही क्या ? उसका फल तो महत्तम होगा ही। एक ओर समस्त सुकर्म है अन्य ओर आपका दर्शन, वह दोनों तुल्य मूल्य है, दूसरी बार दर्शन की भी आवश्यकता नहीं है। आपके चरणों में पतित होकर मनुष्य जिस आनन्द

को प्राप्त करता है वह आनन्द तो इन्द्र क्या अहमिन्द्र बनकर भी नहीं पाया जा सकता, यहाँ तक कि मोक्ष में भी नहीं है।

उन्नीसवें तीर्थंकर की इस प्रकार स्तुति कर शक्र उन्हें मिथिला ले गये और माँ के पास सुला दिया। वे जब गर्भ में थे तब उनकी माँ को पुष्प पर सोने का दोहद उत्पन्न हुआ था इसीलिए राजाने पुत्रीका नाम रखा मल्ली। इन्द्र द्वारा नियुक्त पाँच धात्रियों द्वारा पालित होकर मल्ली ने फूल की तरह विकसित होकर यौवन प्राप्त किया।

अचल का जीव वैजयन्त विमान से च्युत होकर भरत क्षेत्र के साकेत नगर में प्रतिबुद्धि नामक राजा के रूप में जन्मग्रहण किया। उनकी पत्नी पद्मावती सौन्दर्य में जो कि पद्म के अनुरूप थी वह अन्तःपुर के चूड़ामणि रूप थी। उस नगर के ईशान कोण के नाग मन्दिर में एक नागमूर्ति स्थापित थी जो कि भक्तों की कामना पूर्ण करती थी। एक दिन पद्मावती ने अनुचरों सहित उस मन्दिर में जाने की राजा से अनुमति माँगी। राजा ने केवल अनुमति ही नहीं दी पुष्पादि मंगवाकर स्वयं भी उस नाग मन्दिर में गए। वहाँ पुष्प-संभार से सज्जित सभामंडप और स्वपत्नी को दिखाकर प्रतिबुद्धि ने अपने प्रधान मंत्री से पूछा, आप तो राज्य कार्य से अनेक राज्यों में, अनेक राजधानियों में जाते हैं, क्या कहीं भी ऐसा सुसज्जित मण्डप और ऐसी सुसज्जित नारी देखी है?

सुबुद्धि बोले, महाराज, आपके आदेश से जब मैं मिथिला गया था वहाँ महाराज कुम्भ की कन्या मल्ली को देखा। रमनी रत्नो में प्रथमा मल्ली के जन्म दिवस पर वहाँ नाना वर्णीय पुष्पों से जो सभामंडप की रचना की गयी थी वैसी तो स्वर्ग में भी नहीं होती। मल्ली के रूप के सन्मुख चक्रवर्ती की रमणी रत्न, मदन की रति, इन्द्र की शची भी तृणवत् है। कुम्भ की कन्या मल्ली को जिसने भी एकबार देखा है वह अमृत के स्वाद की तरह उस अपरूप सौन्दर्य को कभी भुल नहीं सकता। क्या मानवी क्या देवी उसके अनुरूप कोई नहीं है। सच कहें तो उस रूप को भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

पूर्व जन्म की प्रीति के कारण प्रतिबुद्धि ने तत्क्षण मल्लि से पाणिग्रहण का प्रस्ताव देकर राजा कुम्भ के पास दूत भेजा।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

तीर्थंकर ।। मई १९९१

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'उलटी गंगा' (स्व० कैलाशचन्द्र शास्त्री), 'ब्रह्मचर्य और हम' (सुरेन्द्र बोथरा), 'निरामिष आहार का दर्शन' (डा० रामजी सिंह), 'धर्म और राष्ट्रीयता के बीच झुलती हिन्दुत्व की अवधारणा' (हर्षचन्द्र), 'कवि/उपन्यासकार वीरेन्द्र कुमार जैन का एक अविस्मरणीय पत्र', 'हमारा आध्यात्मिक संगीत भी अब पॉप-म्यूजिक की पगडंडी पर' (गणेश ललवानी), 'पाका, अचित्त या प्रासुक जल : स्वरूप और समस्याएँ' (मुनि नन्दीघोष विजय), 'जैन प्रकाशन समाचार : एक आवश्यकता' (विद्यानन्द कोठारी) ।

प्राकृत विद्या ।। जनवरी-मार्च १९९१

इस अंक में है 'प्रायश्चित तप का वैशिष्ट्य' (कमला जोशी), 'नियमसार का अन्तस्तल' (लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'), 'धरती क्षमा के सहारे टिकी है' (डा० राजेन्द्र रंजन), 'अर्धमागधी भाषा में ज्ञ=न्न या ण्ण' (डा० के० आर० चन्द्र), 'संस्कृत के जैन नारी चरित काव्य' (कल्पना जैन) ।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253

Vol. XV No. 3 **TITTHAYARA** **July 1991**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73